[redacted]

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./.. ..11/2012-14

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष : 70 अंक : 9
सृष्टि संवत् 1960853114
2 जून 2013
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष–70, अंक : 9, 30/2 जून 2013 तदनुसार 20 ज्येष्ठ सम्वत् 2070 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

अमृतदर्शन का पंचम सत्संग

–ले० आचार्य भद्रसेन शालीमार नगर, होशियारपुर

आज संयोग से मौसम बहुत ही सुहावना है, अतः कुछ अधिक श्रोता उपस्थित हैं। भजन समाप्त होते ही दर्शनप्रिय ने महात्मा जी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा–महात्मा जी ! दर्शन पढ़ते हुए मेरे मन में एक शंका बहुत दिनों से घूम रही है। आप के पिछले प्रवचन में दर्शनों की चर्चा सुन कर मुझे भी अपनी बात कहने की इच्छा जाग उठी है। न्याय और वैशेषिक दर्शन में आत्मा के लक्षण बताए गए हैं। वहां इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख, ज्ञान, प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, मन के व्यापार और इन्द्रियों की चेष्टायें, अन्दर के विकार भूख, प्यास, हर्ष, शोक आदि की अनुभूति को आत्मा की पहचान कह गया है। अर्थात् ये सारी बातें आत्मा के कारण ही होती हैं, इन के होने का निमित्त, कारण आत्मा है, अतः ये सब आत्मा के लक्षण हैं।[1] किसी के गुण सदा उस के साथ रहते हैं, उस से अलग कभी नहीं होते, पर गहरी नींद में सोए हुए या बेहोशी में इच्छा, द्वेष, ज्ञान आदि नहीं होते, जब कि आत्मा वहां होती है। फिर इन को आत्मा के गुण कैसे कह सकते हैं ?

महात्मा जी ने दर्शनप्रिय का प्रश्न सुनने के बाद कहा, कि इस प्रकार शास्त्रों को समझकर पढ़ना बहुत अच्छी बात है। इस से एक तो पढ़ा हुआ अपना बन जाता है और दूसरा पढ़ने-सुनने में आनन्द भी अधिक आता है। जहां तक प्रश्न की बात है, यह स्पष्ट बात है, कि गुण और गुणी (=गुणवाले) का आपस में नित्य सम्बन्ध है। गुण-गुणी के बिना नहीं रह सकता, जैसे जल के गुण-शीतलता, आग और प्यास को शान्त करना सदा उस में रहते हैं। गर्म जल भी आग को बुझाता है। हां, न्याय-वैशेषिक के इस प्रसंग में गुण शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, अपितु लिङ्ग (चिन्ह) शब्द है। यह ठीक है, कि वैशेषिक में आत्मा के प्रकरण से पहले पृथिवी, जल, तेज आदि के गुणों की चर्चा है, पर आत्मा के प्रसंग में शास्त्रकार ने लिंग शब्द का प्रयोग किया है। जिस का भाव है–'लीनं गमयति' अर्थात जो छिपे हुए को अस्पष्ट को प्रकट करे, जैसे धुंआ (न दीखने वाली) आग को भी प्रकट करता है। ऐसे ही इच्छा आदि आत्मा की पहचान कराते हैं। हां, इन इच्छा आदि को गुण भी इसी भाव से ही कहा है। इस प्रकरण में इच्छा आदि गुण लक्षण के अर्थ में ही कहे जा सकते हैं, अर्थात् जिस से किसी की पहचान हो। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है, कि कहीं आत्मा है या नहीं ? इस की पहचान इन लक्षणों द्वारा ही होती है। जरूरी नहीं, ये सारे के सारे लक्षण एक साथ ही कहीं प्राप्त हों। कई बार ऐसा भी हो सकता है, कि कुछ लक्षण वहां अधिक उद्भव हों और कुछ किसी विशेष कारण से प्रस्तुत हों।

न्याय और वैशेषिक दर्शन की भावना यह है कि हमारे शरीरों में अपने अनुकूल की चाहना और प्रतिकूल के प्रति द्वेष आदि व्यवहार आत्मा के कारण ही होते हैं। यदि वहां आत्मा का अस्तित्व न हो, तो इच्छादि चेष्टायें भी न होंगी, जैसे कि मृतक या जड़ में इन में से कोई व्यवहार दिखाई नहीं देता। मनुष्यों में ये सारे लक्षण जितने स्पष्ट रूप में सिद्ध होते हैं, अन्य योनियों में तो कुछ लक्षण बिल्कुल ही प्रतीत नहीं होते।

किसी सोए हुए व्यक्ति को गौर से देखो, वहां जाग्रत जैसी स्थिति नहीं होती। कुछ नींद में भी काफी सजग रहते हैं, जैसे कुत्ता और कुछ की नींद बहुत गहरी होती है, तभी तो यह लोकोक्ति है–घोड़े बेच कर सोना। गहरी से गहरी नींद वालों की स्थिति वनस्पति जगत में पहचानी जा सकती है[2]। हां, इस चर्चा का मूल अभिप्राय यही है, कि न्याय-वैशेषिक में इच्छा आदि लक्षण की दृष्टि से ही आए हैं।

विद्या-अविद्या

आप सब को स्मरण होगा, कि अमृत की चर्चा करते हुए आत्मप्रिय ने सब का ध्यान यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय (या ईशावास्योप-निषद) में आए विद्या-अविद्या सम्बन्धी तीन मन्त्रों की ओर आकर्षित किया था। जहां कहा गया है, कि विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है और उस ने तब प्रार्थना की थी, कि इस प्रकरण पर विशेष प्रकाश डाला जाए, जिस से अमृत का रहस्य सामने आ सके।

आओ सब से पहले इन तीनों मन्त्रों के अर्थ पर एक दृष्टि डालें। जिस से फिर गहराई से उन पर विचार किया जा सके।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥12॥

वे घोर अन्धकार को प्राप्त होते हैं, जो अविद्या की उपासना करते हैं या अविद्या का सेवन, व्यवहार करते हैं और वे तो और भी अधिक अन्धकार को प्राप्त होते हैं, जो केवल विद्या की उपासना करते हैं अर्थात् केवल विद्या में ही लगे रहते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद, विचचक्षिरे ॥13॥

जिन्होंने इस का हमारे लिए विवेचन किया है, उन धीर जनों से हम इन दोनों का अलग-अलग परिणाम सुनाते हैं। और वह है–

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद् वेदोभयं सह
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥14॥

जो विद्या और अविद्या को एक साथ, सहयोगी रूप में जानते हैं, वे अविद्या द्वारा मृत्यु को पार करके विद्या से अमृत को प्राप्त करते हैं।

ठीक ऐसा ही वर्णन सम्भूति-असम्भूति का भी वहां है। उस वर्णन से विद्या-अविद्या और सम्भूति-असम्भूति (विनाश) दोनों जोड़े परस्पर क्रमशः पर्यायवाची भी सिद्ध होते हैं अर्थात विद्या और सम्भूति, अविद्या और असम्भूति एक ही अर्थ में भी लिए जा सकते हैं। सामान्य दृष्टि से यह वर्णन एक पहेली सा प्रतीत होता है। क्योंकि विद्यावालों को अविद्यावालों से गहरे अन्धकार में कहा है। वैसे पहेली को बड़ी सूझ-बूझ से हल किया जाता है। जो उलझन जितनी अधिक उलझी हुई होती है, उस को उतने अधिक धीरज से सुलझाया जाता है। तीसरे मन्त्र में विद्या और अविद्या को साथ-साथ, सहयोगी रूप से जानने पर जोर दिया गया है और अविद्या को मृत्यु से पार करने वाला बताया गया है। (शेष पृष्ठ 6 पर)

1. इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गाम् न्याय. 1, 1, 10
   प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः
   सुखदुःखेच्छाद्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि वैशेषिक-3.14
2. मनुस्मृतिकार के ये शब्द–
   तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
   अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः (1, 49)
   इस दृष्टि से विशेष विचारणीय हैं।

मूर्तियों की पूजा क्यों की जाती है ?

-श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक' मो० पु० मुरारई, ज़िला वीरभूम

मूर्तियां न देख सकती हैं न बोल सकती हैं। फिर उन दैवी शक्तियों की काल्पनिक मूर्तियां बनाकर उन्हें धूप, दीप, फल, फूल, मूलकन्द से घड़ी घण्टी बजाकर, उन्हें सोने चांदी के अलंकार और लाखों-लाखों की नगदी में दिया जाता है। उन मूर्तियों के सामने लोग ऐसे अपने-अपने दु:खों का वर्णन करते हैं जैसे लगता है वे सब सुन रही है, उनके इस विश्वास को क्या कहा जाए। क्या गाय की प्रतिमा से हमें दुग्ध प्राप्त हो सकता है ?

क्या आज भी इस विज्ञान के युग में लोग धर्म के सम्बन्ध में इतने अनाड़ी हो गए हैं ? यदि देवी काली, दुर्गा, भगवती, शिव, विष्णु आदि शक्तियों की मूर्तियां देख सकती, बोल सकती हैं, तो उन सबकी पूजा पाठ करनी अनुचित नहीं थी किन्तु वे तो न देख सकती हैं न बोल सकती हैं और न किसी के दु:खों को दूर कर सकती है। यदि दु:खों को हर सकती तो कोई भी मन्नत करने वाले प्रतिमा के भक्त डाक्टरों के यहां नहीं जाते।

महा शिवरात्रि के दिन मूलशंकर (स्वामी दयानन्द) ने शिव शक्ति का चमत्कार देखने के लिए मन्दिर में रात भर जागरण किया, किन्तु शिव चमत्कार के स्थान पर, मूषक दलों का चमत्कार देखने को मिला जो शिव मूर्ति पर उछल कूद कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर उनकी मन की जिज्ञासा ने उनकी ज्ञान चक्षु खोल दी और मन ही मन सोचने लगे कि जो शिव मूषकों को नहीं हटा सकता वह पत्थर का शिव महादेव नहीं हो सकता अत: उन सब दृश्यों को देखकर वे सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े। आगे चलकर उन्होंने ध्यान योग द्वारा उस कल्याण कारक सच्चे शिवत्रिपुरारी के तीन तत्व के दर्शन कर लिए। और कहा कि कोई भी कृत्रिम मूर्त्ति न ईश्वर का रूप है और न वह ईश्वर है, ईश्वर का आकार तो इतना महान् और अनन्त है कि उसके रूप को कोई भी शिल्पी नहीं गढ़ सकता। अत: उस सर्वव्यापी परमेश्वर का "न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महदयश:" (यजु० अ० 32, 3) कोई प्रतिमा= मूर्ति नहीं है जिसका नाम महान यशदायक है।

जैसे रोगों की निवृत्ति औषधियों द्वारा होती है वैसे ही शक्ति, शांति और सुबुद्धि की प्राप्ति किसी मूर्ति पूजा से नहीं, वह तो नियमित भोजन और अष्टांग योग द्वारा ही प्राप्त होती है।

देखिए-किसी से धन लिए बिना ही ईश्वर ने अपनी सृष्टियों से सारे प्राणधारियों को जीवन एवं उनका पालन पोषण नि:स्वार्थ भाव से कर रहा है-उनके वायु देव से सबको प्राण प्राप्त हो रहा है। जल देव से पिपासा मिट रही है और सबको रस प्राप्त हो रहा है तथा उसी से सफाई का काम हो रहा है। धरती माता, एक अन्न के बीज से सैंकड़ों बीज उत्पन्न कर रही है और उससे अनेक प्रकार धातु गैस आदि निकल रहे हैं। अग्नि देव से शरीर में जठराग्नि तथा उसी से भोजन एवं ताप विद्युत उत्पन्न हो रहा है, जिससे सारे मशीन चल रहे हैं। अन्तरिक्ष परमाणुओं का भण्डार है। सूर्य की प्रकाश किरणें उसी से सर्वत्र फैल रही हैं और उसमें सेटेलाइट स्थापित करके परमाणु तरंगों द्वारा दूरदर्शन, दूरभाष एवं कम्प्यूटर का कार्य सम्पन्न हो रहा है। सूर्य देव से सबको दर्शन शक्ति, प्रकाश एवं ऊर्जा की प्राप्ति हो रही है। चन्द्रमा से अन्न पुष्ट हो रहे हैं, समुद्र में ज्वारभाटा तथा उसके द्वारा सामुद्रिक जीवों का विकास होता रहता है। इसके अलावा सूर्य, चन्द्र, वायु, सागर और हिमालय से बादल, वृष्टि, बिजली, तूफान एवं छ: ऋतु-ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शीत और बसन्त बनते रहते हैं।

जैसे चैतन्य की मूर्ति नहीं बन सकती वैसे ही ईश्वर देव महान् की भी मूर्ति नहीं बन सकती। जैसे सरस्वती मेधा शक्ति है, उसकी भी हम सही मूर्ति नहीं बना सकते। अत: ईश्वरीय शक्तियों की मिट्टी और पत्थरों से मूर्तियों बनाकर मानव को सच्चे धर्म के साधन मार्ग से गुमराह किया जा रहा है। हमारे शरीर में अनेक दैवी शक्तियों का वास है और आत्म देव के अन्दर परमात्मा भी है, पर आत्मा को अविद्या तथा योगाभ्यास के अभाव से उसे हम जानने में असमर्थ रहते हैं। हम उसे तभी जान सकते हैं जब मानव का आन्तरिक अज्ञान रूपी बादल अष्टांगयोग रूपी वायु के प्रवाह से हटने लगता है तभी प्रकाश जैसे आत्मा में विद्यमान सूर्य जैसे परमात्मा का प्रकाश जैसे आत्मा के द्वारा उसके उस आनन्द का दर्शन होने लगता है। यह दर्शन ज़ब तक आप अपने को हृदय अथवा भृकुटी में केन्द्रित किए रहते हैं तभी तक ध्यान में उसका अभाव होता है, और जहां मन किंचित चंचल हुआ कि वह एक ध्यान से हटकर श्रवण आदि इन्द्रियों में चला आता है। (उस समय योगाभ्यासी को कुछ देर तक शांत रहकर अथवा भ्रामरी के पश्चात् आसन से उठना चाहिए।)

प्रश्न-जब ईश्वर प्राप्त होता है तब उसकी प्राप्ति की कामना क्यों करें ?

उत्तर-ईश्वर प्राप्त है, पर उसका आनन्द अप्राप्त है इसलिए उसके आनन्द की प्राप्ति के लिए ही कामना की जाती है। जैसे व्यक्ति को रसगुल्ला तो प्राप्त है पर उसका स्वाद कैसा है पता नहीं जब उसका प्रयोग होगा तभी उसके स्वाद का पता चलेगा।

प्रश्न-जब ईश्वर कण-कण में है तो मन्दिर में मूर्तियों में भी है इसलिए मूर्तियों के माध्यम से भी हम लोग ईश्वर की उपासना एवं सिद्धि लाभ कर सकते हैं जैसा कि श्री राम कृष्ण परमहंस ने किया था ?

उत्तर-श्री राम कृष्ण परमहंस अपने अराध्य प्रतिमा को सब जगह मौजूद मानते थे। (या देवी सर्वभूतेषु सर्वव्यापी जगत जननी) वे जंगल में भी देवी नाम से उस सर्वव्यापी महाशक्ति का ही ध्यान करते थे और उनको जो कतिपय सिद्धियां प्राप्त हुई थी वह योग द्वारा उनकी अंदर की ही शक्ति थी। प्रतिमा तो केवल माध्यम थी। क्या आजकल के काली, दुर्गा मां के भक्त मंदिरों के अलावा अन्यत्र कहीं जंगल एकान्त स्थान में उनका ध्यान उपासना बिना एक ढोल, बिना घड़ी घन्ट, बिना फूल फल भोग के कर सकते हैं ? यदि ऐसा करने लगें तो उनमें और वैदिक आर्य सिद्धान्त में कोई खास अंतर ही नहीं रहेगा, क्योंकि आर्य लोग भी उस पवित्र माता गायत्री का जप ध्यान बिना प्रतिमा के उसी प्रकार करते हैं। यह गुरु मंत्र गायत्री महामंत्र है उसी (सविता) देव (परम पिता माता) की ही उपासना एवं ध्यान किया जाता है। अत: ध्यान में गायत्री अथवा ओ३म् प्रणव का ही जप किया जाता है क्योंकि गायत्री ही ओ३म् है और ओ३म् ही गायत्री है। ओ३म् किसी की प्रतिमा नहीं है। उसी ओ३म् प्रणव परमेश्वर को पिता और माता भी समझा जाता है (त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव सर्वम मम देव देव)

मन को एकाग्र करने के लिए केवल ओ३म् का ही सहारा लिया जाता है क्योंकि इस ओ३म् में ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि सभी देवों का समावेश है। देखिए जब भी यज्ञ अथवा किसी देवी देवता का पूजा पाठ होता है तो पहले ओ३म् के बाद उस देवी देवता का मंच या श्लोक पढ़ा जाता है क्योंकि बिना उसके मंत्र अपूर्ण होता है। यथा-ओ३म् नम: शिवाय अर्थात् उस कल्याणकार परमेश्वर को नमस्कार हो। अत: ओम् प्रणव ही सर्वोपरि परमेश्वर का मुख्य नाम है। उसका सही बोध प्राणायाम एवं ध्यान में चित्त की एकाग्रता से होता है। भगवान सर्वत्र होते हैं कोई भी मंदिर-मस्जिद उनका खास घर नहीं है। जब मूर्तियां भगवान स्वरूप हैं तो उनको मंदिरों में क्यों कैद किया जाता है और क्यों मंदिर का फाटक बन्द कर दिया जाता है ? असल में मंदिर के दरवाज़े इसलिए बन्द कर दिए जाते हैं कि उन मूर्तियों पर चढ़े हुए सोने चांदी के करोड़ों का धन चोर चोरी न कर लें। इससे सिद्ध होता है कि भगवान की मूर्ति पर पुजारियों का विश्वास नहीं है। जो देवी देवता या भगवान भक्तों की मन्नत को पूरा कर देते हैं, रोग-कष्टों को ठीक कर देते हैं और श्री प्राप्त करा देते हैं तो उनके ऊपर चढ़े हुए करोड़ों के धन भला चोरी कैसे हो सकता है ?

पंडित राहुल संस्कृत्यायन ने 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' में ठीक लिखा है कि 'आपकी कथनी जैसी है' यदि करनी वैसी नहीं है तो वह कौड़ी की तीन है। कोई पौराणिक वेदान्ती एक शिवालय बनाते हैं तो इसका मतलब है कि सर्वव्यापी शिव जी के ऊपर उनका विश्वास नहीं है। और फिर जब उस शिवालय के ऊपर बिजली गिरने से बचाने के लिए (चुम्बक) लोहा गाड़ते हैं, तो इसका अभिप्राय यही है कि यदि मनुष्य ने पहले से सावधानी नहीं की तो शिव के शासन में रहने वाली बिजली अपने मालिक के ही घर को नष्ट कर देगी।

फिर तो शिव शक्ति से शक्तिमान् आपका साईंस है जो बिजली को ऐसी नाजायज हरकत से रोक सकता है।'

प्रश्न-वेद एकेश्वरवाद है या बहुदेववाद ?

उत्तर-प्रो० भवानी लाल भारतीय के शब्दों में-जिन वेदमन्त्रों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं का स्तवन है, वह उस एक परमेश्वरीय सत्ता के ही विभिन्न नाम है जो उसका तत्त, तन् विभूति, शक्ति, गुणों तथा महत्त्व के द्योतक हैं अत: ये सभी मंत्र प्रकारान्तर से एक परमात्मा देव की ही स्तुति करते हैं।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय.....

सुख और दुख-जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू

जो कुछ हमें अच्छा लगता है वह हमें सुख देता है। इसके विपरीत जो हमें अच्छा नहीं लगता, वह दु:ख का कारण बनता है। यह भी निश्चित है कि जीवन में वही सब कुछ नहीं होता जो हम चाहते हैं। जो कुछ हमारे न चाहने पर घटता है वही हमें दु:ख देता है। लेकिन यदि हमें मनचाहा प्राप्त नहीं हुआ है तो बुद्धिमत्ता इसी में है कि जो कुछ हमें प्राप्त है उसे मनचाहा बना लें। दार्शनिक ह्यूम के अनुसार वह सुखी है जिसकी परिस्थितियां उसके स्वभाव के अनुकूल हैं। लेकिन वह और भी सुखी है जो परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेता है।

मनुष्य जीवन घड़ी के पेण्डुलम की भांति सुख और दुख के मध्य में झूलता रहता है। उस पर कभी सुख की वर्षा होती है तो कभी दु:ख उसे जकड़ लेते हैं। यह भी विचित्र बात है कि अधिक सुख की अभिलाषा ही दु:ख का प्रमुख कारण है। जब हमारी इच्छायें असीमित हो जाती है तो हम उनकी पूर्ति के लिए गलत रास्ता अपना लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हमें दु:ख उठाना पड़ता है। जिस प्रकार बहुत सारे रंग किसी चित्र को बदरंग बना देते हैं, उसी प्रकार बहुत अधिक सुख सामग्री जीवन को दुखी बना देती है। मनुष्य जीवन एक वीणा की भांति है एवं सुख और दु:ख उसके दो राग हैं। यह जीवन जीने वाले के ऊपर निर्भर करता है कि वह वीणा पर जीवन का कौन सा राग बजाना चाहता है। यदि हम दु:ख का राग अलाप रहे हैं तो दोष वीणा का नहीं हमारा है। महाकवि कालिदास का कथन है कि किसी को केवल सुख या एकमात्र दु:ख नहीं मिलता। दु:ख और सुख रथ के पहिये की भांति कभी ऊपर और कभी नीचे रहा करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की यह अभिलाषा होती है कि उसके पास सुख सुविधा के साधन हों तथा उसका जीवन सुख और चैन से व्यतीत हो। सब समान रूप से सुखी हों-यह समय और समाज की पुकार है। हम सभी अपनी कल्पना के स्वर्ग को साकार कर अधिकतम सुख प्राप्त करना चाहते हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो स्वर्ग की अवतारणा करके स्वर्णिम प्रभात के दर्शन करने का अभिलाषी न हो? सामान्य व्यक्ति की स्थिति यह है कि जो कुछ हमारे पास नहीं है, हम उसके लिए लालायित रहते हैं और जो कुछ उपलब्ध है उसका सम्यक् उपयोग एवं उपभोग नहीं कर पाते हैं। तब क्या सुख चैन या स्वर्ग का जीवन अलभ्य है? स्वर्ग को बैकुण्ठ भी कहा गया है अर्थात् जहां किसी तरह की कोई कुण्ठा न हो। तब क्या कुण्ठरहित जीवन कल्पना की वस्तु है?

सुखी एवं प्रसन्न जीवन का आधार धन या पद नहीं है। इसे वर्तमान स्थिति से संगति रखते हुए संतुष्ट रहने एवं उपलब्ध साधनों का सदुपयोग करने में पाया जा सकता है। इन्हीं दो आधारों पर उच्चतर भविष्य के लिए प्रयत्न, परिश्रम एवं पुरूषार्थ भी सम्भव है। अपनी आजीविका के लिए कठिन संघर्ष करने वाले एवं विषम परिस्थितियों से जूझने वाले अनेक व्यक्तियों के चेहरों पर सुख एवं संतोष की आभा दिखाई देती है, जबकि अपेक्षाकृत अधिक सुविधा सम्पन्न परिस्थितियों में रहने वाले लोग दुखी और दुर्भाग्यपूर्ण जीवन जीते हैं। ऐसा क्यों ? दरअसल सुखी एवं प्रसन्न जीवन के रास्ते में परिस्थितियां बिल्कुल भी बाधक नहीं हैं। मन:स्थिति ही सन्तोष एवं असन्तोष को जन्म देती है। सन्तुष्टि जहां वर्तमान परिस्थितियों को पूरी तरह स्वीकार करने का भाव उत्पन्न कराती हैं वहीं असन्तुष्ट मन सदा अपनी कमियों को देखकर व्याकुलता पैदा करता है। सुख की खोज में असन्तुष्ट मन की व्यथा प्रकट करते हुए टैगोर कहते हैं-नदी का किनारा आह भरकर कहता है कि सामने के दूसरे किनारे पर ही सारे सुख हैं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सामने वाला किनारा पहले से भी ज्यादा आह भरकर कहता है कि संसार में जितना सुख है, वह सारा उस दूसरे किनारे पर है।

जो अपने वर्तमान से असन्तुष्ट है, उसे अभावग्रस्त समझते हैं, उससे सांमजस्य नहीं कर पा रहे हैं, साधन एवं सुविधाओं के लिए रोना रोते हुए व्यग्र रहते हैं, वे एक उच्चतर भविष्य के लिए प्रयत्न किस प्रकार कर सकते हैं। उज्जवल भविष्य के लिए सन्तुलित चित्तवृत्ति, स्थिर बुद्धि, प्रसन्न मन:स्थिति एवं उपलब्ध साधनों में विश्वास की आवश्यकता होती है। अभावात्मक सोच एवं असीमित इच्छाएं असन्तोष का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इच्छाओं के भंवर में फंसा व्यक्ति अपने आस-पास बिखरे सुखों को नहीं देख पाता है और दुखी होता है। इच्छाएं अनन्त हैं और उसी तरह दु:ख भी अनन्त हैं। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा है कि जीवन में केवल दो ही स्थल दु:खपूर्ण होते हैं, पहला इच्छाओं की पूर्ति हो जाना और दूसरा इच्छाएं अपूर्ण रह जाना। वास्तव मे वे लोग बहुत सौभाग्यशाली हैं जो अपनी इच्छाओं एवं सामर्थ्य के बीच व्याप्त खाई की चौड़ाई को शीघ्र जान लेते हैं अन्यथा चादर से अधिक पैर फैलाने वाले को दुखी देखा गया है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार इच्छाओं का समुद्र सदा अतृप्त रहता है। उसकी मांग ज्यों-ज्यों पूरी की जाती है, वह त्यों-त्यों अधिकाधिक गर्जना करता जाता है। खुशियां तथा सुख परमात्मा की ऐसी देन है जो सम्पूर्ण जीवन मार्ग पर बिखरे पड़े है। जो लोगे मंजिल पर पहुंच कर खुशियां तलाशने को बेताब हैं, वे निराश और दुखी होते हैं। जीवन का हर पल खुशनुमा है, इसे खुशी से जीएं। जीवन का हर क्षण आनन्द से परिपूर्ण है- इसका अमृतपान करें। आनन्द के गीत गाएं तथा अपने जीवन को खुशहाल बनाएं।

-प्रेम भारद्वाज सम्पादक एवं सभा महामंत्री

आर्य समाज नई मण्डी का चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज मन्दिर, 16-डी दयानन्द मार्ग (वकीलरोड), नई मण्डी, मुजफ्फरनगर की कार्यकारिणी का चुनाव वर्ष 2013-14 के लिए चुनाव अधिकारी बाबू जितेन्द्र कुमार एडवोकेट (पूर्व महासचिव, ज़िला बार संघ, मुजफ्फरनगर) के निर्देशन में सर्वसम्मति से दिनांक 28.04.2013 को प्रात: साप्ताहिक यज्ञ-सत्संग के उपरान्य आर्य समाज के सभागार में बाबू राजपालसिंह चाहल एडवोकेट व श्री आनन्दपाल सिंह आर्य की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए-श्री राजपाल सिंह चाहल सरंक्षक एडवोकेट, श्री आनन्दपाल सिंह आर्य प्रधान, श्री जगदीश आचार्य उपप्रधान एडवोकेट, श्री देवीसिंह आर्य उप-प्रधान, श्री आर. पी. शर्मा मन्त्री, श्री देवीसिंह सिम्भालका उपमन्त्री, श्री वीरेन्द्र सिंह आर्य उप-मन्त्री, श्री गुलबीर सिंह आर्य कोषाध्यक्ष, श्री राकेश कुमार आर्य पुस्तकालयध्यक्ष, श्री आनन्दस्वरूप आर्य उप पुस्तकालयाध्यक्ष, श्री अशोक बालियान एडवोकेट (माजरा) अधिष्ठाता आर्यवीर दल, श्री सुरेन्द्रपाल सिंह आर्य प्रचार मन्त्री, श्री डा० नरेश कुमार आर्य संगठन मंत्री, श्री मंगत सिंह आर्य भण्डार अध्यक्ष, श्री मास्टर सोमपाल सिंह आर्य सदस्य अंतरंगसभा, श्री इं० रणबीर सिंह आर्य सदस्य अन्तरंगसभा, श्री अशोक बलियान सदस्य अन्तरंगसभा, श्री योगेन्द्र कुमार बलियान अन्तरंगसभा, श्री महाशय जयप्रकाश वर्मा सदस्य अन्तरंगसभा, बाबू जितेन्द्र कुमार आर्य एडवोकेट सदस्य अन्तरंगसभा। श्री जितेन्द्र कुमार मलिक लेखा परीक्षक नियुक्त किए गए। **-आर० पी० शर्मा**

आर्य समाज धारीवाल का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज धारीवाल का वार्षिक उत्सव दिनांक 29 मई 2013 से 2 जून 2013 तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर 29 मई 2013 से 1 जून 2013 तक प्रतिदिन प्रात: 6.30 बजे से 8.00 बजे तक भजन एवं उपदेश होंगे इसी तरह रात्रि 8.30 बजे से 10.30 बजे तक श्री नारायण सिंह जी महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रवचन एवं श्री सतीश सुभाष भजन मंडली के मधुर भजन होंगे। मुख्य समारोह 2 जून 2013 रविवार को प्रात: शुरू होगा जिसमें गायत्री महायज्ञ की पूर्णाहुति प्रात: 8.30 बजे से 10.30 बजे होगी। 10.30 बजे से दोपहर 1.00 बजे तक प्रसिद्ध विद्वानों के प्रवचन होंगे। 1.00 बजे ऋषि लंगर का आयोजन किया जायेगा। सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वह इस अवसर पर धर्म लाभ उठावें। **-जोगेन्द्र पाल शास्त्री मंत्री आर्य समाज**

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म

-ले० सुरेश शास्त्री जी सभा कार्यालय- जालन्धर

मानव जीवन की सार्थकता के लिए कर्मशील बनना आवश्यक है। कर्म का यह प्रवाह जीवन पर्यन्त चलते रहना चाहिए। यह कर्म प्रवाह यदि निष्काम भाव से चलता है तो मानव जीवन के लक्ष्य मोक्षानन्द का प्राप्त करना सहज हो जाता है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के दूसरे मंत्र में हमें कर्मशील बनने का उपदेश दिया है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते।।

अर्थात् हम इस संसार में सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करें। परमपिता परमात्मा ने अपने अमृतमय वेदवचनों से श्रेष्ठतम कर्म करने के लिए प्रेरित किया है। यह जीवन कर्म भूमि है, इस कर्म भूमि में आकर अतिशय श्रेष्ठ कर्म करना ही श्रेयस्कर है। श्रेष्ठतम कर्म क्या है? यह जानने के लिए शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है।

यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है यह समाधान प्राप्त होने पर श्रेष्ठतम कर्म को भलीभांति जानने के लिए यज्ञ का स्वरूप समझ लेना चाहिए। यज्ञ शब्द यज् धातु से निष्पन्न है जिसके अर्थ हैं देवपूजा, संगतिकरण और दान। इस आधार पर देवपूजा, संगतिकरण व दानरूप तत्त्वत्रयात्मक प्रत्येक कर्म यज्ञ है। यज्ञ का प्रथम मौलिक तत्त्व देव पूजा है। पूजात्मक प्रत्येक कर्म यज्ञ है। पूजसेवायाम् धातु से पूजा शब्द निष्पन्न है जिसका अर्थ है सेवा, सत्कार, प्रियाचरण आदि। देव की पूजा ही देवपूजा होती है। निरुक्तकार आचार्य यास्क का कथन है कि देवो दानाद्वा, द्वीपनाद्वा द्युस्थानो भवतीतिवा जिस प्रकार ईश्वर में दान दीपन, द्योतन व सूर्य आदि के प्रकाशन का स्वाभाविक गुण वर्तमान है उसी प्रकार ईश्वर की कृपा से अग्नि आदि चेतन व जड़ दोनों में जितना- जितना जिस-जिस में दिव्यगुण वर्तमान है, उतना-उतना ही उसमें भी देवत्व है। देव बनने के लिए दान का अवलम्बन आवश्यक है। जहां विद्या आदि दानों की भावना है वहां देवत्व है। दान आदि प्रवृत्तियों से ही देव पूज्य पद पर अधिष्ठित होते हैं। पूजा का पात्र व्यक्ति देव ही होना चाहिए, देवत्व के बिना अन्यत्र की गई पूजा दुर्भिक्ष, मृत्यु, व भय आदि का कारण तो बन सकती श्रेष्ठतम कर्म नहीं।

यज्ञ का दूसरा मौलिक तत्त्व दान है। दान के बिना यज्ञ की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहां जहां दान है वहां-वहां यज्ञ है और जहां दान का अभाव है वहां यज्ञ का भी अभाव है। देश, काल व पात्र को देखकर ही दान किया जाना चाहिए तभी देवपूजा होती है। दान यज्ञ का ऐसा तत्त्व है जो देव व याजक दोनों में रहता है। जब देव व याजक दोनों दानी हैं तो देव पूज्य क्यों? याजक पूजक क्यों? यह अन्तर इसलिए है क्योंकि याजक का देना लेने के लिए है जबकि देव का लेना देने के लिए है। जहां याजक की देकर लेने की भावना देव बनने में बाधक है वहीं लेकर उसे सहस्रगुणित करके देने की भावना देव को पूजास्पद बना देती है। याजक जब यज्ञ प्रक्रिया के निरन्तर अभ्यास से स्वार्थभाव से मुक्त होकर पुनः लेने की भावना छोड़ देता है तब वह भी देव बन जाता है।

संगतिकरण भी यज्ञ का मौलिक तत्त्व है। जो देव व पूजक में संगति बैठा दे दानादान के माध्यम से हवि को सार्थक कर दे, पूजक का दान देव को तथा देव का आदान पूजक तक पहुंचा दे वही संगतिकरण है। संगतिकरण के बिना देव व याजक का दानादान संभव न होने के कारण देव पूजा संभव नहीं है अतः संगतिकरण यज्ञ का महत्तम तत्त्व है। देवपूजात्मक, दानात्मक व संगतिकरणात्मक प्रत्येक कर्म यज्ञ होने से श्रेष्ठतम हैं। याजक को श्रेष्ठ कर्म की परीक्षा के लिए उपर्युक्त विधि से भली-भांति देख लेना चाहिए कि अमुक कर्म देवपूजात्मक, संगतिकरणात्मक व दानात्मक कर्म है या नहीं, यदि है तो निश्चय से वह कर्म श्रेष्ठतम है। इन देवपूजा आदि तीनों तत्त्वों का जिस-जिस क्षेत्र में सामंजस्य हो जाता है वही क्षेत्र यज्ञमय हो जाता है। अग्निहोत्र सर्वस्व पुस्तक में स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती जी का यथार्थ कथन है कि इन तीनों तत्त्वों का सामंजस्य व्यक्ति में दृष्टिगोचर होने पर व्यक्ति यज्ञ रूप होगा। परिवार में होने दृष्टिगोचर होने पर परिवार यज्ञरूप कहलाएगा। राष्ट्र में दृष्टिगोचर होने पर राष्ट्र यज्ञरूप होगा। ब्रह्माण्ड को यज्ञ इसलिए कहते हैं कि उसकी हर क्रिया में तीनों तत्त्वों का सामंजस्य है।

यज्ञ के तीनों मौलिक तत्त्वों को अपनाकर जीवन के विविध क्षेत्रों में सामंजस्य पैदा करने के लिए याजक इसका नित्य अभ्यास करे। यह अभ्यास अग्निहोत्र के माध्यम से प्रतिदिन होता है। याजक जब अग्निहोत्र करता है तो वह देव पर अग्नि, संगतिकरण पद पर समिधा तथा दान पद पर अधिष्ठित आज्य को प्रतिदिन प्रत्यक्ष करता है। वह देखता है कि मैंने आज्य आदि के रूप में जो हवि दी है, अग्निदेव उसे सहस्रगुणित करके पुनः लौटा रहे हैं। आज्य व अग्नि का संगतिकरण समिधा किए हुए है, आज्य का अग्नि देव तक पहुंचना तथा उसे सहस्रगुणित करके अग्नि द्वारा पुनः लौटा देना संगतिकरण पद पर अधिष्ठित समिधा के माध्यम से ही सम्भव हो पा रहा है। याजक भली-भांति समझ लेता है कि यदि अग्निहोत्र करना है तो यज्ञशाला में देव के प्रतीक अग्नि, संगतिकरण के प्रतीक समिधा व दान के प्रतीक आज्य का उपस्थित होना अतीव आवश्यक है। इस तत्त्वत्रय के बिना कोई भी यज्ञ हो पाना सम्भव नहीं है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख है कि जायमानो ह वै-पुरुषस्त्रिभिर्ऋणै-र्ऋणवान् जायते अर्थात् प्रत्येक मनुष्य तीन ऋणों से ऋणी उत्पन्न होता है। यज्ञ के द्वारा सभी को देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण से उऋण होना चाहिए इसलिए पंचमहायज्ञों को अनिवार्य घोषित करते हुए महर्षि मनु सचेत करते हैं कि-

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञ च सर्वदा।

नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथा-शक्तिर्न हापयेत्।।

ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ व पितृयज्ञ अपने पूर्ण सामर्थ्य से नित्यप्रति अवश्य करना चाहिए प्रत्येक याजक महर्षि दयानन्द प्रणीत पंचमहायज्ञ विधि के अनुसार पंचमहायज्ञों से अपने जीवन को महान बनाने के लिए सतत क्रियाशील रहे। ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त ऋषियों ने वेदों से सींच- सींच कर बड़े-बड़े यज्ञों का वर्णन किया है, परन्तु महायज्ञ केवल दैनिक पंचयज्ञों को ही कहा है क्योंकि इन पंचमहायज्ञों से ही याजक महान बनकर अन्य बड़े-बड़े यज्ञ कर सकता है।

परमपिता परमात्मा ने बड़े उत्तम कर्मों के परिणामस्वरूप हमें मानव शरीर प्रदान किया है। इस शरीर से यदि हम यज्ञ करें तो यह शरीर दैवी नाव कहलाता है। इस मनुष्य शरीर की सार्थकता तभी है जब हम यज्ञों से इस शरीर को ब्रह्मप्राप्ति का साधन बनाकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि करें।

आधुनिक परिस्थितियों में दैनिक यज्ञ आदि कर्त्तव्यों का अनुष्ठान

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून

(गतांक से आगे)

सावधान रहते हुए बीच बीच में उठने वाले विचारों, स्मृतियों, चित्रों आदि को प्रयत्नपूर्वक हटा कर ईश्वर के ध्यान में स्थित रहना चाहिये। ऐसा करते हुए ईश्वर प्रणिधान व उसमें धारणा बनी रहे और ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव भी सतत् बना रहे। अभ्यास से जब सन्ध्या में एकाग्रता प्राप्त हो जाती है तो विशेष लाभ अर्थात् आनन्द आता है। दीर्घ काल तक निरन्तर ऐसा अभ्यास करने से उपासक समाधि को प्राप्त होकर ईश्वर साक्षात्कार कर सकता है जिससे जन्म मरण के बंधनों से मुक्ति की पात्रता प्राप्त होती है। यही प्रत्येक जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य भी है। सन्ध्योपासना की सफलता में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। स्वाध्याय सन्ध्या का एक आवश्यक अंग है जिसके बिना सन्ध्या के उद्देश्य की पूर्ति में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, ऋग्वेद-यजुर्वेद भाष्य, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि समस्त ग्रन्थ, स्वामी सत्पतिजी के प्रवचनों का बृहती ब्रह्ममेधा नाम से प्रकाशित संग्रह आदि का स्वाध्याय करना उपयोगी होगा।

यहां हम महामहोपाध्याय पंडित युधिष्ठिर मीमांसक जी के जीवन की एक प्रेरणादायक घटना देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं। पं. मीमांसक अपने शिक्षाकाल में वाराणसी में एक विख्यात विद्वान से दर्शन आदि पढ़ते थे। गुरूजी पौराणिक थे और उनको बताया नहीं गया था कि उनके विद्यार्थी, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, महर्षि दयानन्द व आर्य समाज के अनुयायी हैं। पण्डितजी अपने गुरूजी को सन्ध्योपासना करते हुए देखते तो उनके मन में विचार आता था कि पता नहीं गुरूजी किस सन्ध्या-पद्धति से ध्यान व उपासना करते हैं। अत: उन्होंने विचार किया कि क्यों न महर्षि दयानन्द लिखित सन्ध्योपासना विधि गुरूजी को देकर उनसे पूछा जाये कि यह विधि ठीक है या नहीं। विचार करने पर ध्यान आया कि यदि यह पुस्तक उन्हें दे दी तो उनके आर्य समाजी होने का भेद खुल जायेगा और परिणामस्वरूप उनका अध्ययन बाधित हो सकता है। अत: अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए पण्डितजी ने उस पुस्तक का बाहर का आवरण पृष्ठ जहां स्वामी दयानन्द का नाम था, हटा दिया और वह पुस्तक गुरूजी को इस निवेदन के साथ भेंट की कि गुरूजी, 'मैं इस पुस्तक की विधि के अनुसार सन्ध्या करता हूं। मुझे पता नहीं कि यह ठीक भी है अथवा नहीं। यदि आप इसे देख लें और मेरा मार्गदर्शन कर दें तो मैं आपका आभारी होऊंगा।' गुरूजी ने पुस्तक ले ली और उसके बाद कई दिन व्यतीत हो गये। न गुरूजी ने और न पण्डितजी ने पुस्तक पर परस्पर कोई चर्चा की। जब कई दिन हो गये तो एक दिन पण्डितजी ने गुरूजी के पुत्र जो उनके सहाध्यायी थे, उन्हें पूरी बात बता कर गुरूजी से उस पुस्तक पर सम्मति सूचित करने का निवेदन किया। इस पर उनके उस सहपाठी गुरूपुत्र ने बताया कि गुरूजी तो आजकल अपनी पुरानी सन्ध्यापद्धति को छोड़कर, पं. युधिष्ठिरजी द्वारा गुरूजी को दी गई पुस्तक के अनुसार, सन्ध्या कर रहे हैं। स्वाभाविक था कि इससे पण्डितजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई होगी। इसके बाद एक दिन अवसर पाकर पण्डितजी ने गुरूजी से स्वयं पूछ लिया तब गुरूजी ने उस पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की और पूछा कि इसका लेखक कौन है ? पण्डितजी ने बता दिया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती इसके लेखक है। यह जानकर गुरूजी को आश्चर्य हुआ और कहा कि क्या सचमुच महर्षि दयानन्द इतने बड़े विद्वान थे ? सम्भवत: उन्हें इस बात का पश्चाताप भी हुआ होगा कि हम अकारण स्वामी दयानन्द की आलोचना में प्रवृत्त रहते हैं।

यहां हम ऐसे लोगों के लिए, जो सन्ध्या आदि कर्तव्यों के लिए बिल्कुल भी समय नहीं निकाल पाते, यह कहना चाहते हैं कि यदि किसी कारण से समय न निकल रहा हो तो फिर जितना भी समय है उसमें निरालस्य होकर ईश्वर के ध्यान में कुछ समय के लिए बैठ जायें और ईश्वर से अपनी भाषा में वेद मन्त्रों के आशय के अनुरूप स्तुति, प्रार्थना व उपासना कर लें। यदि बैठ कर उपासना सम्भव न हो तो बस या वाहन में बैठे हुए या कार्यालय में समय मिलने पर कुछ देर के लिए समय निकाल कर आंखे बन्द कर ईश्वर का ध्यान करते हुए मन्त्रों के पाठ के साथ ध्यान व उपासना कर लें अथवा अपनी भाषा में ईश्वर का धन्यवाद करते हुए स्तुति, प्रार्थना व उपासना करें। इससे पूर्ण लाभ तो नहीं, किंचित लाभ अवश्य होगा और यह ध्यान भी रहेगा कि सन्ध्या करनी है और कालान्तर पर, सेवानिवृत्ति, व वृद्धावस्था आदि में इस संस्कार व प्रवृत्ति के फलस्वरूप 'सन्ध्या' आदि कार्यों में तीव्रता से अग्रसर हो सकता है। सन्ध्या के लिए अपने सोने का समय कुछ कम कर, जल्दी जाग कर व रात्रि को भोजन से पूर्व व शयन से पूर्व भी समय की उपलब्धता के अनुसार सन्ध्या की जा सकती है। हमें यह जान लेना है कि सन्ध्या करना परमावश्यक कार्य है अन्यथा हम कृतघ्नता के पाप के दोषी सिद्ध होते हैं। इसका कारण है कि जिस ईश्वर ने हमें जन्म दिया, मानव शरीर, माता-पिता-बन्धु-आचार्य दिये हैं, यह समस्त संसार व इसके पदार्थ भोग करने हेतु दिये हुए हैं, उसकी उपासना, स्तुति आदि करके उपकार न मानना अक्षम्य कृतघ्नता है।

सन्ध्या के बाद दूसरा कर्तव्य या धर्म दैनिक अग्निहोत्र का होता है जिसे देवयज्ञ भी कहते हैं। हवन शब्द भी अग्निहोत्र व यज्ञ के लिए प्रयुक्त होता है जिसे दैनन्दिन प्रात: एवं सायं दो समय करने का विधान हमारे ऋषियों ने किया है। पहले संक्षेप में यह जानना आवश्यक है कि यह यज्ञ क्यों करते हैं ? मुख्य कारण तो यह है कि हमारे निमित्त से वायु व जल आदि का जो प्रदूषण होता है, उसे दूर किया जाये। दूसरा इससे प्राणियों, वायु व जल आदि को लाभ होता है। रोगों में भी इससे अनेक विध लाभ होते हैं। जहां रोग नहीं है वहां इसके करने से रोग होने की सम्भावना या तो समाप्त हो जाती है या फिर कोई हल्का फुल्का रोग ही कभी हो सकता है। अग्निहोत्र करने से, घरों व कमरों में श्वास-प्रश्वास आदि से, अग्नि के धुएं व खाद्य पदार्थो के विकारों से जो प्रदूषण होता है, वह प्राय: समाप्त हो जाता है। घरों की वायु अग्निहोत्र की अग्नि के सम्पर्क में आकर, हल्की होकर, बाहर चली जाती है और बाहर की शुद्ध वायु कमरों में प्रवेश करती है जो कि स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। दैनिक अग्निहोत्र भी वेदमन्त्रों के साथ करने से वेद मन्त्रों में निहित ईश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना का लाभ प्रदान करते हैं। जिन परिवारों व बन्धुओं के पास समय का अभाव या अनुकूल परिस्थितियां नहीं हैं, हमारा विचार है कि उन्हें एक स्थान पर बैठकर ही सभी मन्त्रों का क्रमश: उच्चारण कर लेना चाहिये और जब अवकाश होने पर वह यज्ञ कर सकते हैं तो हवनकुण्ड रखकर शाकल्य व घृत आदि की हवियों के साथ यज्ञ करना चाहिये। बिना हवियों के मन्त्रोच्चार या मौन रूप से यज्ञ करने से भी कुछ आध्यात्मिक लाभ अवश्य होगा ऐसी हमारी धारणा है। हमारा अभिप्राय: है कि यज्ञ करना छोड़ना नहीं है, हमारे पास जो भी विकल्प हों उसके अनुरूप काम किया जा सकता है। हमें यह भी ध्यान रखना है कि हमारे पूर्वज सत्यधर्मा, आप्त, तत्ववेत्ता, सूक्ष्मदर्शी व ज्ञानी, ईश्वर का प्रत्यक्ष किए हुए व उसे उसके वास्तविक रूप में जानने वाले, धीर, वीर व गम्भीर थे। उन्होंने जो कहा है कि वह हमारे हित में है और हमें उनके प्रत्येक हितकारी आदेश का निष्ठा से पालन करना है। यज्ञ के करने का विधान तो स्वयं ईश्वर ने वेदों में भी किया हुआ है, अत: यह आवश्यक करना चाहिये अथवा हम ईश्वर की आज्ञा भंग करने से दण्डनीय हो सकते हैं।

तीसरा दैनिक यज्ञ एवं कर्तव्य पितृ यज्ञ है जिसमें घर में माता-पिता, दादी-दादा और उनसे आयुवृद्ध यदि कोई सगा सम्बन्धी परिवार में है तो भोजन, वस्त्र एवं औषधियों से उनके पालन-पोषण का ध्यान रखना है एवं उन सभी को अपने आदर, श्रद्धा आदि वेदविहित व्यवहारों से सन्तुष्ट रखना है। इसके पश्चात चौथा यज्ञ एवं कर्तव्य अतिथियज्ञ है जिसमें गृहस्थ में यदा-कदा आने वाले विचारवान, बुद्धिमान, वेदज्ञ विद्वानों का सत्कार करना होता है। उन्हें भी जल, भोजन, वस्त्र एवं सामर्थ्यानुसार दक्षिणा से सन्तुष्ट करना होता है। यदि उन्हें कोई अन्य व्यक्तिगत या सामाजिक हितों के कार्यों में किसी प्रकार से सहयोग की अपेक्षा हो तो उसे भी सामर्थ्यानुसार पूरा करना चाहिये, इससे ज्ञानवृद्धि, समाज में प्रतिष्ठा की प्राप्ति, आत्मा की उन्नति आदि लाभ होते हैं। अन्तिम यज्ञ भूत यज्ञ अथवा प्राणी यज्ञ है जिसमें मनुष्यत्तेर योनियों के पालतू पशु व पक्षी आदि प्राणियों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार भोजन कराना वांछनीय है। यदि जीवन में इन कार्यों व कर्तव्यों की पूर्ति का सन्तुलन बन जाता है तो यह मनुष्यों के वर्तमान व भविष्य के जीवन अर्थात् पुनर्जन्म के लिए उपयोगी कार्य होगा। भूतयज्ञ इसलिए भी करना उचित है कि पिछले जन्मों में हम, हो सकता है पशु, पक्षी आदि रहे हों और तब उस समय के मनुष्यों ने भोजन आदि से हमें तृप्त किया हो, उनका ऋण उतर जाता है। हो सकता है उस समय के कुछ मनुष्य इस जन्म में पशु-पक्षी बने हो या भविष्य में पुन: यह क्रम उलट जाये। इस परम्परा के निर्वाह से पूर्वजन्म के मनुष्यों को, जो इस जन्म में घरेलू व पालतू पशु,पक्षी आदि प्राणी बने हैं, उन्हें भोजन के लिए कष्ट नहीं उठाने होंगे, यही पुण्य कर्म आदि से अतिरिक्त, इस यज्ञ की सार्थकता लगती है। प्रत्येक व्यक्ति को पंचमहायज्ञविधि एवं संस्कार-विधि का अध्ययन करते रहना चाहिये जिससे कि उनके कर्तव्यों के निर्वाह में कहीं चूक न होने पाये। इस प्रकार जीवन व्यतीत करने से हम ईश्वर से जुड़े रहेगें और इनके द्वारा जीवन के लक्ष्य अपवर्ग की ओर अग्रसर होकर इस जन्म व भावी जन्मों में मुक्ति का लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं।

हम समझते हैं कि वैदिक धर्म व संस्कृति को मानने व आचरण में लाने वाले सभी बन्धु अतीव भाग्यशाली हैं। हमें गौरव है कि हमारी परम्परायें तर्क, प्रमाण, ईश्वरीय ज्ञान वेद व सत्य पर आधारित हैं। इसके आचरण से कभी किसी को कोई हानि नहीं हुई और न हो सकती है एवं आध्यात्मिक एवं सांसारिक उन्नति का लाभ इतना अधिक है कि उसका मूल्यांकन किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता है। हमारा अनुमान है कि जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति केवल वैदिक धर्म के आचरण से ही मिलती है, अन्य किसी भी प्रकार से यह असम्भव है। अत: दुनियां के सभी लोगों को वैदिक धर्म की शरण में आकर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

पृष्ठ 1 का शेष- अमृतदर्शन का पंचम.....

सामान्य रूप से विद्या का अर्थ ज्ञान, पढ़ाई-लिखाई लिया जाता है और ज्ञान कई प्रकार का है। आजकल अविद्या शब्द उलटी विद्या के अर्थ में प्रचलित है। परन्तु इस प्रकरण में अविद्या को मृत्यु से तारने वाला कहा गया है। उलटी विद्या से तो उलटा मृत्यु और भी जल्दी आ जाती है, जैसे दवा या बिजली के उलटे प्रयोग से मौत एकदम आ घेरती है। अत: यहां अविद्या का अर्थ ऐसी चीज से है, जो मौत से बचाती है और विद्या से भिन्न है। न+विद्या-अविद्या अर्थात् जो विद्या न हो, और कुछ हो अत: जरूरी नहीं कि उल्टी विद्या को ही अविद्या कहा जाए[1]।

सामान्य दृष्टि से यह वर्णन एक पहेली सा प्रतीत होता है। क्योंकि विद्यावालों को अविद्यावालों से गहरे अन्धकार में कहा है। वैसे पहेली को बड़ी सूझ-बूझ से हल किया जाता है। जो उलझन जितनी अधिक उलझी हुई होती है, उस को उतने अधिक धीरज से सुलझाया जाता है। तीसरे मन्त्र में विद्या और अविद्या को साथ-साथ, सहयोगी रूप से जानने पर जोर दिया गया है और अविद्या को मृत्यु से पार करने वाला बताया गया है। सामान्य रूप से विद्या का अर्थ ज्ञान, पढ़ाई-लिखाई लिया जाता है और ज्ञान कई प्रकार का है। आजकल अविद्या शब्द उलटी विद्या के अर्थ में प्रचलित है। परन्तु इस प्रकरण में अविद्या को मृत्यु से तारने वाला कहा गया है। उलटी विद्या से तो उलटा मृत्यु और भी जल्दी आ जाती है, जैसे दवा या बिजली के उलटे प्रयोग से मौत एकदम आ घेरती है। अत: यहां अविद्या का अर्थ ऐसी चीज से है, जो मौत से बचाती है और विद्या से भिन्न है। न+विद्या-अविद्या अर्थात् जो विद्या न हो, और कुछ हो अत: जरूरी नहीं कि उल्टी विद्या को ही अविद्या कहा जाए[2]।

अर्थात् यहां अविद्या शब्द उलटे ज्ञान के अर्थ में है। इस की विशेष चर्चा 'आर्य समाज के नियमों का एक अनुशीलन' के ८वें नियम में है।

विद्या-शब्द विद् धातु से बनता है, जो ज्ञान, विचार, लाभ और सत्ता के अर्थ में है। ज्ञान, विचार और लाभ का जो साधन है, वह भी विद्या का वाच्य है अर्थात् जिस के द्वारा ज्ञान, विचार और लाभ होता है। न केवल भारतीयशास्त्रों में अपितु संसार के सारे साहित्य में विद्या की भरपूर प्रशंसा प्राप्त होती है।

मुण्डक उपनिषद में विद्या के परा और अपरा दो भेद बताए गए हैं[2], वहां कहा है-पराविद्या वह है, जिस से उस अविनाशी तत्त्व का ज्ञान होता है। यहां अक्षर शब्द परमात्मा का वाचक है। इससे यही परिणाम निकलता है, कि परमात्मा से, भिन्न पदार्थों का ज्ञान ही अपरा विद्या है, अर्थात् दुनियावी ज्ञान। यजुर्वेद 40, 12-14 में जिस को विद्या और अविद्या के नाम से स्मरण किया है, उसी को मुण्डक में परा और अपरा विद्या के नाम से याद किया गया है।

2. द्वे विद्येवेदितव्ये इति हस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति । परा

चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदो...।

अथ परा यथा तदक्षरमधिगम्यते 1, 1, 4-5

इस प्रकरण पर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि यहां विद्या शब्द अध्यात्मज्ञान का वाचक है। भारतीय दर्शनों और अन्य शास्त्रों में विद्या-ज्ञान का जो महत्त्व दर्शाया गया है तथा उस-उस प्रकरण में वहां उस के जो विशेषण और पर्याय वाचक शब्द आए हैं। उन से भी यही सिद्ध होता है, कि ज्ञान शब्द यहां अध्यात्मज्ञान का बोधक है,क्योंकि वहां ज्ञान, तत्त्वज्ञान से मोक्षसिद्धि का निर्देश है[1]। जो कि मानव जीवन का लक्ष्य, उद्देश्य पुरूषार्थ माना गया है।

1. तत्त्वज्ञानान्नि: श्रेयसम् न्याय, वैशेषिक ज्ञान से एवं वैशेषिक में बताए गए प्रमाण-प्रमेय आदि सोलह पदार्थों के तात्त्विक ज्ञान से एवं वैशेषिक में निर्दिष्ट द्रव्य-गुण-कर्म आदि छ: या सात पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्यपूर्वक तात्त्विक ज्ञान से नि:श्रेयस=मोक्ष, परमकल्याण की प्राप्ति होती है। यही भाव ज्ञानान्मुक्ति: सांख्य 3,23, ऋते ज्ञानान्न मुक्ति:, विद्या हि का ? मुक्तिप्रदा या आचार्यशंकर-प्रश्नोत्तरी।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों में विद्या को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है[2]। मनुस्मृति में अनेकत्र विद्याशब्द अध्यात्मज्ञान के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। तभी तो कहा है, कि विद्या और तप से प्राणियों के आत्मा का निखार होता है[3] और सभी प्रकार के ज्ञानों में से आत्मा का ज्ञान सर्वोत्कृष्ट है, क्योंकि उसी से अमृत की उपलब्धि होती है।

3. विद्यातपोभ्यां भूतात्मा 5,109=जैसे जल से शरीर स्वच्छ होता है, ऐसे ही विद्या और तप से प्राणियों का आत्मा संस्कृत होता है। यहां आत्मा का प्रकरण है, अत: विद्या शब्द आत्मज्ञान के अर्थ में है और तप योग के, तभी तो याज्ञवल्क्य स्मृति में आता है-अयन्तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्, 1,8=योग द्वारा आत्मा का दर्शन करना परमधर्म है। भूख, प्यास, सर्दी-गर्मी का सहन रूपी तप (द्वन्द्वसहनं तप:) तो शरीर का धर्म है। अत: वह यहां ग्राह्य नहीं है। 5,109 के वाक्य का ही 12,104 में मनु ने पुन: निर्देश किया है-

तपो विद्या च विप्रस्य नि:श्रेयस्करं परम्। तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमतश्नुते॥

यहां तप और विद्या को पूर्वनिर्दिष्ट विद्या-अविद्या के सहयोगी रूप से ही समर्थित किया है।

1. सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम।

तदहि-अग्रयं सर्वेविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं तत: ।।मनु 12,85

यजुर्वेद 31, 18 में स्पष्ट रूप से संकेत किया है, कि आदित्य के समान प्रकाशमान, अन्धकार से रहित, महान पुरूष को मैंने जान लिया है। उसी को ही जान कर मृत्यु को लांघा जाता है, इस का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

2. वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमा-दित्यवर्णं तमस: परस्तात्।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय॥

ऐसे ही यजुर्वेद 3,60 में प्रार्थना करते हुए एक भक्त कहता है, कि 'कल्याणकारक, पुष्टिकर्त्ता, सर्वद्रष्टा की हम पूजा, आराधना, अर्चना करते हैं। जैसे सुगन्धित पुष्टिकारक खरबूजा स्वाभाविक रूप से अपने डण्ठल से अलग हो जाता है। ऐसे ही हम भी मृत्यु के बन्धन से सरलतापूर्वक मुक्त हों, अमृत से नहीं अर्थात् अमृत से सदा जुड़े रहें[3]। यही अन्तिम भाव बृहदारण्यक उपनिषद 1,3,28 में 'मृत्यो मां अमृतं गमय' शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है। यहां अमृत शब्द मृत्यु से भिन्न जीवन के अर्थ में ही स्पष्ट रूप से आया है, जिस से अलग न होने की प्रार्थना है। हां, इस को मोक्ष के अर्थ में भी लिया जा सकता है।

3. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥ 3,60

अविद्या-इस प्रकरण के अनुरूप विद्या का अर्थ स्पष्ट हो जाने पर अब अविद्या शब्द के अर्थ पर विचार करना सरल हो जाता है। यह पहले भी कहा जा चुका है, कि विद्या (आत्मज्ञान, पराविद्या) से भिन्न को अविद्या (अपरा विद्या=दुनियावी ज्ञान) कहा गया है। आत्मा, परमात्मा के ज्ञान से दुनियावी ज्ञान भिन्न ही प्रकार का है और इस में कर्म की प्रमुखता है। इस प्रकार अविद्या का अर्थ कर्म भी है, क्योंकि वह ज्ञान से भिन्न है। आत्मा के जो लक्षण हैं, उन में से ज्ञान और प्रयत्न (कर्म) ही मुख्य हैं, शेष इन्हीं में आ जाते हैं। विद्या-अविद्या का वर्णन करने वाले तीसरे मन्त्र में इन को साथ-साथ सहयोगी रूप में जानना ही हितकारक कहा है। ज्ञान-कर्म का ही आपस में गहरा मेल है, क्योंकि ज्ञान से ही कर्म होता है, ज्ञान जब कर्म के रूप में परिणत होता है, तो वह हमारी दुनियावी जरूरतों को पूरा करने में सफल होता है। जरूरतों के पूरा होने पर ही जीवन जग-मगाता है। विचार (थ्यूरी) से आचार (प्रैक्टीकल) होता है। इसी बात को मनुस्मृति में विद्या तथा तप शब्दों से स्पष्ट किया है[1])। थ्यूरी के प्रैक्टीकल के रूप में प्रमाणित और परिणत होने पर ही वस्तु उद्योग के माध्यम से सर्वसुलभ होती है। अत: ज्ञान के बिना कर्म अधूरा है और कर्म में आए बिना ज्ञान भार रूप [2], निरर्थक है अर्थात् वह फलदायक नहीं बनता।

1. विद्यातपोभ्यां भूतात्मा 5,109

2. ज्ञानं भार: क्रियां बिना

अत: इस प्रकरण में अविद्या शब्द दुनियावी ज्ञान, कारोबार के अर्थ में है और तभी वह मृत्यु से बचाता है। सारे दुनियावी कारोबार मृत्यु को दूर करने या मृत्यु से बचाने के लिए ही हैं। जैसे कि खेती, उद्योग, व्यापार आदि के कारोबार। इन कारोबारों को करने वाले किसान, मजदूर, राज उद्योगपति, दुकानदार, डाक्टर, शिक्षक, राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक आदि दुनियां को मौत के मुंह से बचाने के लिए अपने-अपने ढंग से प्रयत्न कर रहे हैं। यदि ये सब अपना-अपना कार्य न करें, तो इन से उत्पादित वस्तु के अभाव में मौत का चक्र ही चल पड़े। तभी तो हम देखते हैं, कि जल, खाद्यान्न के अभाव में अकाल पड़ जाता है, और फिर सारा कारोबार वहीं ठप्प हो जाता है। प्रशासकवर्ग अपने-अपने क्षेत्र में शान्ति एवं कानून की व्यवस्था बना कर नागरिकों को जीने का अवसर देते हैं, अन्यथा अराजकता से मौत जैसा चक्र चलता है। पंजाब का जहां 81 से 13 तक का घटनाचक्र इस का जीता-जागता उदाहरण है, वहां अब वही स्थिति 96 से जम्मू-काश्मीर में चल रही है।

एक चिकित्सा विशेषज्ञ अपनी साधना से जिस प्रकार रोगी को मौत के मुंह से निकाल कर लाता है या यथासम्भव मौत को परे धकेलने का प्रयास करता है, वह सर्वप्रत्यक्ष बात है। अत: दुनिया में अनेक तरह का कारोबार मौत से बचाने या मौत को परे धकेलने के लिए हो रहा है। उन्नीसवीं, बीसवीं शताब्दी के भौतिक विज्ञान का इतिहास इस बात का गवाह है, कि उस ने अनेक क्षेत्रों में अद्भुत चमत्कार किया है। जिस से आज जल, अन्न, वस्त्र के अभाव को दूर करके संसार में अभाव-दुख रोग से होने वाली मृत्यु से अनेकों को बचाया जा रहा है। तभी तो आज पहले की तरह होने वाली महामारियों के नाम सुनाई नहीं देते। इसी प्रकार वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा कर और शुद्ध रूप में जरूरत की चीजों को प्राप्त करा कर भौतिक विज्ञान अमिट सेवा कर रहा है। जैसे आज कृषि विज्ञान ने अधिक अन्न पैदा करके भूख से मरतों को मौत के मुंह से बचा लिया है। अन्यथा जब कभी किस रूप में असावधानी होती है, तो वहां मौत का नग्न नाच सामने आ जाता है। जैसे कि भोपाल में गैस के रिसाव से तीन हजार से अधिक लोग मौत के मुंह में चले गए। इस का दूसरे प्रकार का दूसरा उदाहरण है-मई 1984 में बंगाल आदि अनेक प्रान्तों में पेचिस के कारण दो हजार से अधिक मौतें हुई। पेचिस का सब से बड़ा कारण गन्दा जल ही है। अत: इस प्रकरण में अविद्या का अर्थ है, दुनियावी कारोबार, भौतिक विज्ञान। जो कि जीवन की रक्षा और विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए इस को विद्या से प्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि अध्यात्म भी जीवित शरीर से ही साधा जा सकता है।

1. योगदर्शन में अविद्या की परिभाषा स्पष्ट करते हुए कहा है-अनित्याशुचिदु:खानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मातिरविद्या 2, 5, अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां-2,4

2. धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:। धीर्विद्यासत्यमक्रोधों दशकं धर्मलक्षणम्। 6,12 इस की व्याख्या 'सरल-सुखी जीवन' में देखें।

श्रद्धांजलि समाचार

मां शब्द बोलते ही ममता की एक किरण सी निकल पड़ती है। एक ऐसी ही मां जिसमें आर्यत्व कूट-कूट कर भरा हुआ था, जो कभी भी विचलित न होने वाली, प्रभु पर अटूट विश्वास रखने वाली, धैर्यशील, कर्मशील थी। ऐसी ही पूजनीय माता श्रीमती सुदर्शना रानी विज जो आर्य समाज शहीद भगत सिंह कालोनी के उपप्रधान श्री राजिन्द्र विज जी की माता थी। वह मां आज हमारे बीच में नहीं रही जिनको आर्य मॉडल स्कूल शहीद भगत सिंह नगर के सभी छात्र-छात्राएं एवं आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर के प्रधान श्री ओम प्रकाश अग्रवाल, स्कूल के प्रबन्धक श्री राजीव भाटिया, अध्यापक एवं अध्यापिकाएं बहुत प्यार करते थे। पूज्य माता जी का 5-5-2013 को अकस्मात् निधन हो गया था।

माता सुदर्शना जी की अन्त्येष्टि दीनानगर में ही वैदिक रीति-रिवाज से की गई। जिसमें जालन्धर की आर्य समाजों के सदस्य एवं दीनानगर की आर्य समाजों की संस्थाओं के लोग पधारें। अन्त्येष्टि में बहुत उच्च कोटि के विद्वान् विशेषकर दयानन्द मठ दीनानगर के पूज्य स्वामी सदानन्द जी उपस्थित हुए। माता जी के चले जाने से श्री राजिन्द्र विज जी के समस्त परिवार को बहुत असहनीय दु:ख हुआ है। प्रभु ऐसे परिवार को माता-पिता जी के पदचिन्हों पर चलने की प्रेरणा दे एवं दारूण दु:ख सहन करने की शक्ति प्रदान करे और सदा महर्षि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाते रहें। इस दु:ख की घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

-ओम प्रकाश अग्रवाल प्रधान

शानदार परीक्षा परिणाम

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा घोषित मार्च 2013 के बारहवीं के परीक्षा परिणाम में गांधी आर्य सीनियर सैकेण्डरी स्कूल बरनाला का परीक्षा परिणाम शत प्रतिशत रहा। कुल 139 विद्यार्थी परीक्षा में बैठे जिनमें से 60 विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण की। रोल नंबर 314775 विक्की ने 87% अंक प्राप्त करके प्रथम, सिमरनजीत कौर रोल नंबर 314723 ने 84% अंकों के साथ द्वितीय स्थान प्राप्त किया। जबकि दो छात्राएं गगनदीप कौर रोल नंबर 314715 और मनिन्दर कौर, रोल नंबर 314725 ने 81% अंक प्राप्त करके तृतीय स्थान प्राप्त करने में सफल रही। इस अवसर पर स्कूल की प्रबन्ध समिति ने स्कूल के डायरैक्टर डा० एच. कुमार कौल, जिनके अथक परिश्रम, लगन व उचित मार्गदर्शन से स्कूल निरन्तर सफलता के सोपान चढ़ रहा है, के साथ-साथ समूह स्टॉफ को भी शानदार सफलता के लिए बधाई दी। **-प्रो० सुमन**

आर्य माडल स्कूल बठिंडा का परिणाम शत प्रतिशत

आर्य माडल सीनियर सैकेंडरी स्कूल बठिंडा का 12वीं कक्षा का परिणाम शत प्रतिशत रहा। तीन बच्चे अभिषेक 85 फीसदी, शरद बिन्दल 84 प्रतिशत तथा दीपक बांसल ने 83 प्रतिशत अंक लेकर प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थान प्राप्त किया। संस्कारशाला नामक प्रतियोगिता में हमारे सकूल के साथ साथ सभी प्रतिष्ठित स्कूलों ने भाग लिया। इसमें आर्य माडल सी.सै.स्कूल बठिंडा की बारहवीं कक्षा की प्रेरणा ने अपने वर्ग में प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा प्रतिभा जैन को सांत्वना पुरस्कार मिला।

स्कूल के प्रधान श्री पी.डी.गोयल ने परिणाम आने पर जहां सारे बच्चों को बधाई दी वहीं उन सब बच्चों को जिन्होंने स्कूल एवं आर्य समाज का नाम उज्जवल किया उनको आशीर्वाद दिया तथा स्कूल के कोच श्री मुकेश कुमार का बहुत बहुत धन्यवाद किया। स्कूल प्रधान ने स्कूल के नाम रोशन करने वाले छात्रों को विशेष प्रोत्साहन देने की घोषणा की। **-विपिन कुमार गर्ग प्रिंसीपल**

आचार्य राम सुफल शास्त्री को पितृशोक

हिसार के वैदिक विद्वान आचार्य राम सुफल शास्त्री जी के पूज्य पिता श्री जगन्नाथ जी का गत दिनों 70 वर्ष की आयु में अकस्मात निधन हो गया। वे अपने पीछे तीन पुत्र एवं तीन पुत्रियों का भरा पूरा परिवार छोड़ गये हैं।

पृष्ठ 2 का शेष- मूर्तियों में.....

श्री अरविंद ने अपने प्रसिद्ध लेख दयानन्द एवं वेद में मैक्समूलर के इस नव अविष्कृत हीनो थीज्म का उपहास करते हुए वैदिक एकेश्वरवाद को वेद का निर्विवाद सिद्धान्त माना है।

प्रश्न-जिसका कोई आकार नहीं है, जो परमाणुओं का कोई कण नहीं है जो ऋतु-परिवर्तन से परे है जो भौतिक अग्नि नहीं है वह ईश्वर कैसे सामर्थवान हो सकता है ?

उत्तर-जिसने शून्य प्रकृति से भिन्न-भिन्न सृष्टियों के आकार प्रकार का रूप दिया है वह ईश्वर अमिश्रित आत्म द्रव्य से अत्यन्त सूक्ष्म है। वह प्रकृति के परमाणु कणों से परे है, वह सर्वत्र सर्वव्यापी समर्थ वाला है, उसी के सम्पर्क परमाणु कणों को शक्ति एवं गति प्राप्त होती है (जैसे चेतना से मानव को होती है) ईश्वर एक अनुभव का तत्व है उसे किसी भी यन्त्र से न पकड़ा जा सकता है न देखा जा सकता है। ईश्वर है और उसमें सर्वज्ञता का भी गुण है। इसलिए तो इस आत्मसामर्थ वाले आत्मा के लिए मस्तिष्क का निर्माण किया है। वह सर्वदृष्टा है इसलिए चक्षुओं का निर्माण किया है। उसमें श्रवण का भी गुण है इसलिए आत्मा को सुनने का साधन बना है। उसमें स्वर के भी-गुण है इसलिए कण्ठ और जिह्वा का निर्माण हुआ है, जिनसे आदि ऋषियों को वेद विद्या की प्राप्ति हुई अत: वह प्रणव प्राणाधार परमेश्वर अनेक दिव्य गुणों से युक्त है जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता, इसलिए तो उसे सर्वशक्तिमान् कहा गया है। जैसे धुएं को देखकर अग्नि का, पढ़ते हुए विद्यार्थी को देखकर विद्या का, पुत्र को देखकर पिता का ज्ञान होता है। उसी प्रकार मानव शरीर की बुद्धिपूर्वक रचना, तितलियों में पंख की कला, वनस्पतियों के फल फूलों के गुण तथा जीवन उपयोगी पंचतत्व एवं सूर्य चन्द्रादि को देखकर विज्ञान स्वरूप परमेश्वर तत्व का ज्ञान स्वाभाविक रूप से होता है।

तत्वज्ञान-ईश्वरीय सृष्टियों से जो देखने वाला देखने का साधन बनाया है, ज्ञान करने वाला ज्ञान करने के लिए मस्तिष्क का निर्माण किया है, क्रिया करने वाला कर्मेन्द्रियों को बनाया है, भोग करने वाला, भोग करने का साधन शरीर का निर्माण किया है वह जीवात्मा है।

जैसे एक ही प्राण शक्ति आत्मा के सम्पर्क से शरीर उपकरणों को सक्रिय रखती है उसी प्रकार सारी सूक्ष्म से विराट् सृष्टियों की शक्तियां ईश्वर के सम्पर्क से क्रियाशील होकर सबको यथायोग्य प्रकाशित कर रही है। जैसे चालक द्वारा मशीन के चालू होने पर शक्ति उत्पन्न होती है और उससे गाड़ी चलने लगती है उसी प्रकार सर्वशक्तिमान परमेश्वर द्वारा जब परमाणुओं को शक्ति प्राप्त होती है तो उनके संघान से सारी सृष्टि उसके नियम के अनुसार उत्पन्न होने लगती है। जैसे आत्मा का सम्पर्क शरीर से हट जाने से शरीर एवं उसके उपकरण निष्क्रिय जड़वत हो जाती है वैसे ही जहां-जहां से ईश्वर अपने समर्थ को समेट लेता है वहां-वहां से नियम का बन्धन टूटने से प्रलय होने लगता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार "जन्माद्यास्ययत:" 1/1/2, (यत:) जिससे (अस्य) इस जगत् की (जन्मादि) सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है, वह ब्रह्म है अर्थात् जो जगत् को उत्पन्न स्थिर और नाश करने वाला है, वह परमात्मा है।

जब हम मानव शरीर के डिजाइन एवं उसके इन्द्रियों तथा अन्तर के उपकरणों का नियमित गठन एवं तापमान और रूधिर आदि की मात्राओं को देखते हैं तो इससे सिद्ध हो जाता है कि मानव उत्पत्ति के पूर्व जिसने बुद्धिपूर्वक उसकी रचना का सांचा बनाया है वह सर्वज्ञ के अलावा प्रकृति का काम नहीं है। ऐसा लगता है कि सृष्टि में एक ऐसा सर्वव्यापी महान् प्रकृति से परे एवं आत्मा से भी सूक्ष्म तत्व है जो विज्ञान के गुणों से सम्पन्न तथा प्राण के समान सर्वत्र विद्यमान है। वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप और अति दूर भी है। गीता 13, 15 ईश्वर: सर्व भूतानां हृदयेऽर्जुना-तिष्ठति। गीता 18,61 हे अर्जुन ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित है तुम सब प्रकार से उसी के शरण में जावो तभी तुम्हारा कल्याण होगा। अत: ईश्वर प्राण के समान सब जगह है-किन्तु वह दिखती नहीं है, उसका बोध अष्टांग योग द्वारा ही होता है।

शत प्रतिशत परिणाम

आर्य गर्ल्ज सी.सै.स्कूल पुराना बाजार लुधियाना का वर्ष 2012-13 का बोर्ड परीक्षा कॉमर्स ग्रुप का परिणाम शत प्रतिशत रहा। विद्यालय के कॉमर्स ग्रुप में कुल 41 विद्यार्थियों ने परीक्षा दी जिसमें 40 प्रथम श्रेणी और एक विद्यार्थी द्वितीय श्रेणी में पास हुआ। इसी तरह आर्ट्स ग्रुप में 76 छात्राओं ने परीक्षा दी जिसमें 64 विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी और 6 विद्यार्थियों ने द्वितीय श्रेणी में पास हुये। इस अवसर पर स्कूल प्रबन्ध समिति ने सभी विद्यार्थियों को अपनी शुभकामनाएं दी। **-प्रिंसीपल**

वेद वाणी

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं मायायावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

-ऋ० १।८०।७

विनय-हे इन्द्र ! तू स्वराज्य की साधना में सफल होगा, अवश्य सफल होगा। माया के मृग को माया द्वारा ही मारकर अवश्य सफल होगा, क्योंकि तेरा वीर्य, तेरा बल स्वाभाविक है। संसार में एक तू ही है जिसके लिए बल कहीं बाहर से प्रेरित नहीं हुआ है, कहीं अन्यत्र से नहीं आया है। यह तेरे ही अन्दर से निकला है, तेरा अपना है, तेरा स्व-बल है। स्व-बल से ही स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। तेरे मुकाबिले में जो मायावी मृग है उसके पास स्वबल नहीं है। वह छल-कपट द्वारा तेरे ही बल को तेरे विरुद्ध प्रयुक्त कर रहा है और राज्य कर रहा है। परन्तु ऐसा माया का बल कितनी देर टिक सकता है ? वह नहीं जानता कि माया उत्पन्न होते ही अपने साथ विरोधी माया को भी उत्पन्न करती है। माया जन्म के साथ ही अपने विनाश के लिए अभिशापित होती है। ऋण-विद्युत् धन-विद्युत् को पैदा किये बिना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। इसलिए हे आत्मन् ! तू इन भयंकर से भयंकर भी दीखने वाले माया के बने मृगेन्द्रों से, प्रकृति के पुतलों से, क्यों भयभीत होता है ? यह माया (यह प्रकृति) तो स्वयं विनश्वर स्वभाववाली है ? अपने में ही विरुद्धता रखने के कारण स्वयं विनष्ट हो जाने वाली है। देख, ये परस्पर-विरोधी रज और तम स्वयं लड़ रहे हैं। उनमें धनात्मक होने से यद्यपि रज विजयी हो रहा है, पर वह भी उससे अधिक धनात्मक सत्त्व के मुकाबिले में दब जाता है और फिर रज और तम के बिना न रह सकने के कारण वह विजयी सत्त्व भी तेरे सामने से स्वयं भाग जाता है। यह देह घात करने से कभी नष्ट नहीं होता, फिर-फिर पैदा हो जाता है। तू इन अजेय संस्कारों को भी अपने विरुद्ध संस्कारों द्वारा ही जय कर लेता है। एवं हे इन्द्र ! तू देह से देह तो दग्ध करता है, मन से मन को मार लेता है, संस्कारों से संस्कारों को नष्ट कर देता है, प्रकृति के पुतलों को प्रकृति के द्वारा ही पिघला देता है, इन माया के मृगों को माया द्वारा ही मार देता है। पर यह काया, माया से इसीलिए मरती है चूँकि इसमें कुछ भी स्व-बल नहीं है। अतः, हे इन्द्र ! जब तू अपना स्वबल प्रकट करेगा तो निःसन्देह तेरा स्वराज्य हो जाएगा, तेरा स्वराज्य स्थापित हो जाएगा।

-साभार वैदिक विनयः प्रस्तुति रणजीत आर्य

आर्य समाज कंडाघाट (हिमाचल) का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज कंडाघाट (हिमाचल प्रदेश) का वार्षिक उत्सव 11, 12, 13 तथा 14 मई 2013 को बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ। कंडाघाट हिमाचल प्रदेश के सोलन जिले में एक छोटा सा किन्तु सुन्दर सा शहर है। सोलन और शिमला के बीच में स्थित यह नगर चण्डीगढ़ से सड़क और रेल दोनों मार्गों से जुड़ा हुआ है। 11 मई 2013 दिन शनिवार को प्रातः पांच बजे पूरे कंडाघाट में प्रभात फेरी निकाली गई। प्रातः 10.00 बजे ध्वजारोहण के साथ ही इस आर्य समाज का यज्ञ के साथ उत्सव आरम्भ हुआ। सायं काल नगर में विशाल शोभायात्रा निकाली गई जिसमें सैंकड़ों नर-नारियों, युवकों तथा बच्चों ने भाग लिया और झांकिया भी निकाली गईं। अन्तिम दिन मंगलवार 14 मई को दोपहर को आर्य समाज में ऋषि लंगर का आयोजन किया गया जिसमें सभी आए हुये आर्य जनों ने आनन्द उठाया।

गुरूकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

100 गुरुकुल शताब्दी

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।